

## आदिवासी कविता में पर्यावरण चेतना

### सारांश

साहित्य की कोई भी विधा रही हो प्रकृति उसमें विद्यमान रही है। कवियों ने प्रकृति से प्रेरणा भी ग्रहण की है। लेकिन जिस प्रकृति की गोद में मनुष्य ने जन्म लेकर आगे बढ़ना सीखा है, आज वही प्रकृति मनुष्य द्वारा नष्ट की जा रही है। जीवन का आधार होते हुए भी आज विकास और उपभोग की लालसा में मनुष्य प्रकृति का अंधाधुंध दौहन कर प्राकृतिक संरचना के साथ खिलवाड़ कर रहा है। जिससे निरंतर पर्यावरण संतुलन बिगड़ता जा रहा है, पर्यावरण प्रदूषण से सारे विश्व के सामने विकट समस्या पैदा हो रही है। आज का साहित्य और साहित्यकार इस समस्या को निरंतर महसूस कर रहा है। आज साहित्यकार के सामने यह बहुत बड़ा दायित्व है कि वह प्रकृति और पर्यावरण प्रदूषण की समस्या के कारकों का खुलकर पर्दाफास करें तथा शासन-प्रशासन और जनता में जाग्रति फैलाएं। आज प्रकृति चित्रण के आलंबन और उद्दीपन रूप तक सीमित रहने से काम नहीं चल सकता। प्रकृति के प्रति गंभीर चिन्तन की आवश्यकता है। हिन्दी में पर्यावरण चिन्तन को लेकर वर्तमान में लिखा जा रहा है। लेकिन दलित विमर्श, आदिवासी विमर्श या स्त्री विमर्श जैसी स्थिति (प्रकृति या पर्यावरण विमर्श) अभी नहीं है। साहित्यकारों को इस दिशा में कदम बढ़ाने होंगे। यह किसी से छुपा हुआ नहीं है कि विकास के नाम पर प्राकृतिक संसाधनों का नीति और नियमों का उलंघन कर दोहन किया जा रहा है। सरकार इस दृश्य को खुली आंखों से देख रही है। लेकिन पूंजीवादी गठजोड़ के कारण औद्योगिकीकरण, कॉरपोरेटपरस्ती, बड़ी-बड़ी परियोजनाओं, शहरीकरण, विकास के विविध कार्यों के बहाने ने केवल अनियंत्रित रूप से जल, जंगल, जमीन को हड़पा जा रहा है बल्कि प्रकृति की संरचना के साथ भी छेड़छाड़ की जा रही है। आदिवासी संस्कृति पर्यावरणीय संस्कृति है। आदिवासी हमेशा से ही प्रकृति की गोद में रहे हैं। आदिवासी संस्कृति सहअस्तित्व की संस्कृति है। प्रकृति के बिना आदिवासी अपने अस्तित्व की कल्पना नहीं कर सकता। आदिवासियों ने प्रकृति को न तो छेड़ा है और न ही उसका दोहन किया। उसके हर व्यवहार व संस्कार में प्रकृति का संरक्षण व पोषण की भावना निहित है। हिन्दी में इस दृष्टि से यदि उपलब्ध साहित्य की समीक्षा की जाय तो आदिवासी साहित्य में यह चिन्तन प्रखर है। आदिवासी साहित्यकारों ने इस दिशा में पर्याप्त मात्रा में लिखा है। आदिवासी जीवन वन सम्पदा का पूजक और हितैषी रहा है। 'अपनी परम्परा से भावात्मक जुड़ाव के कारण आज भी देश की ये विविध जनजातियां जंगलों, पहाड़ों के बीच रहकर 'वनदेवता' (सिंगबोंगा) की पूजा करते हैं। जंगल और जंगल के सम्पूर्ण परिवेश के साथ उनका नाभिनाल संबंध है। वेशभूषा, खान-पान, पर्व-त्योहार, नृत्य, गीत, पूजा, पाठ अर्थात् इनके जीवन का कोई भी पक्ष हो, प्रकृति वहाँ साकार रूप में विद्यमान रहती है।' लेकिन विकास और औद्योगिकीकरण, जंगल व जमीन के सौदागरों के कारण आदिवासी आज पर्यावरण शरणार्थी बन कर गया है। उसके टोर-टिकाने को वनों की अंधाधुंध कटाई व औद्योगिकीकरण ने उजाड़कर रख दिया है। आदिवासी साहित्यकारों ने प्रकृति संरक्षण और पर्यावरण चेतना की अलख जगाई है। इस दृष्टि से यदि आदिवासी कविता पर विचार किया जाये तो हमें पता चलता है कि आदिवासी कविता में जिस प्रकार आदिवासी संस्कृति और अस्तित्व के सवाल को उठाया गया है उसी आवेग और जोश के साथ प्रकृति और पर्यावरण से जुड़ सवालों को भी उठा गया है। आदिवासी कविता प्रकृति और पर्यावरण, जल, जंगल और जमीन से जुड़े जिन मुद्दों को उठा रही है। वे काल्पनिक या सतही नहीं हैं बल्कि आज का यथार्थ और ज्वलन्त समस्या है। नदियां सूखती जा रही है, तो पर्वत टूट कर समतल होते जा रहे हैं। प्रकृति के मनोरम दृश्य, पशु, पक्षी, वनस्पतियां, पेड़-पौधे लुप्त होते जा रहे हैं। आदिवासी कविता ने अपनी सम्पूर्ण अभिव्यक्ति में पर्यावरण और प्रकृति के वर्तमान परिदृश्य और बरबादी, उसके कारकों तथा परिणामों की प्रभावी व बेबाक अभिव्यक्ति दी है। निश्चय ही आदिवासी कविता ने इस वैश्विक समस्या को रेखांकित कर जाग्रति का संदेश दिया है।



सियाराम मीणा

व्याख्याता,  
हिन्दी विभाग,  
राजकीय महाविद्यालय,  
बूंदी, राजस्थान

**मुख्य शब्द :** पर्यावरण, आदिवासी कविता, औद्योगिकीकरण, प्राकृतिक संसाधन, दौहन, विकास, मॉडल जल, जंगल, जमीन, प्रदूषण, पारिस्थितिकी तंत्र।

**प्रस्तावना**

प्रकृति और मनुष्य का सम्बंध सनातन है। प्रकृति के विविध उपादानों से मानव ने अपने जीवन को संवारा है। मनुष्य प्रकृति की पूजा करता रहा है। हमारे प्राचीन साहित्य में प्रकृति को शक्ति के रूप में माना गया है। प्राचीन साहित्य और जीवन शैली में प्रकृति विविध रूपों और प्रकारों में उपस्थित रही है। मनुष्य की रागात्मक अनुभूतियों में प्रकृति का विशिष्ट महत्व है। साहित्य की कोई भी विधा रही हो प्रकृति उसमें विद्यमान रही है। जहां तक कविता का सवाल है; प्रकृति कविता का विषय भी रही है और अभिव्यक्ति का माध्यम भी रही है। कवियों ने प्रकृति से प्रेरणा भी ग्रहण की है। हिन्दी का छायावाद एक प्रकार से प्रकृति काव्य ही है। पंत प्रकृति के चितरे और प्रकृति के सुकुमार कवि के रूप में प्रसिद्ध है। प्रकृति के उपादानों से कवियों ने कविता को रूपाकार दिया है। लेकिन जिस प्रकृति की गोद में मनुष्य जन्म लेकर आगे बढ़ना सीखा है, आज वही प्रकृति मनुष्य द्वारा नष्ट की जा रही है। जीवन का आधार होते हुए भी आज विकास और उपभोग की लालसा में मनुष्य प्रकृति का अंधाधुंध दौहन कर प्राकृतिक संरचना के साथ खिलवाड़ कर रहा है। वृक्षों की अंधाधुंध कटाई, जंगलों का सफाया निरन्तर बढ़ता जा रहा है। निरन्तर पर्यावरण संतुलन बिगड़ता जा रहा है, पर्यावरण प्रदूषण से सारे विश्व के सामने विकट समस्या पैदा हो रही है। डॉ.एच.एम.सक्सेना ने लिखा है कि "पर्यावरण हमारी पृथ्वी पर जीवन का आधार है, जो न केवल मानव अपितु विभिन्न प्रकार के जीव-जंतुओं एवं वनस्पति के उद्भव, विकास एवं अस्तित्व का आधार है। सभ्यता के विकास से वर्तमान युग तक मानव ने जो प्रगति की है, उसमें पर्यावरण की महती भूमिका है और यह कहना अतिशयोक्ति न होगा कि मानव सभ्यता एवं संस्कृति का विकास मानव-पर्यावरण के समयानुकूलन एवं सामंजस्य का परिणाम है। यही कारण है कि अनेक प्राचीन सभ्यताएं प्रतिकूल पर्यावरण के कारण काल के गर्त में समा गईं तथा अनेक जीवों एवं पादप समूहों की प्रजातियाँ विलुप्त हो गईं और अनेक पर यह संकट गहराता जा रहा है।<sup>1</sup> भौतिकतावादी, बाजारवादी, पूंजीवादी व उपभोगतावादी वैश्विक संस्कृति ने न केवल पर्यावरण संतुलन को बिगाड़ा है अपितु प्रकृति को विकराल रूप धारण करने के लिए भी विवश किया है। पर्यावरण प्रदूषण के कारण ग्लोबल वार्मिंग, वायु प्रदूषण, जल प्रदूषण, मृदा प्रदूषण आदि की भयंकर समस्याएं समूचे विश्व के सामने खड़ी हैं। पर्यावरण प्रदूषण के कारण जलवायु में निरन्तर परिवर्तन होता जा रहा है। प्राकृतिक जंगलों की जगह कंकरीट के जंगल उगते जा रहे हैं। पहाड़ों को खोदकर खोखला किया जा रहा है। मनुष्य ही क्या प्राणी जगत् के लिए अस्तित्व का संकट खड़ा होता जा रहा है। प्रमोद भार्गव ने लिखा है कि "वैश्विक तापमान में वृद्धि के कारण जलस्तर तो बढ़ेगा ही, जल का तापमान बढ़ेगा और पानी क्षारीय भी होगा, नतीजतन समुद्र का पारिस्थितिकी तंत्र भी बिगड़ेगा। यह स्थिति उन जीव-जंतु व समुद्री पौधों को खत्म कर देगी जो समुद्र तटीय इलाकों में रहने वाली बड़ी आबादी का पेट भरते हैं...जलवायु परिवर्तन के प्रभाव का अध्ययन करने वाले जेम्स पेंडर का मानना है कि सन्

2080 तक बांग्लादेश के तटीय इलाकों में रहने वाले पांच से दस करोड़ लोगों को अपना मूल क्षेत्र छोड़ना पड़ सकता है।<sup>2</sup> इतना होते हुए भी पर्यावरण संरक्षण के लिए बने मापदण्डों व अधिनियमों की राष्ट्रीय और अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर धज्जियां उड़ाई जा रही हैं। विकास के नाम पर पर्यावरण की अनदेखी की जा रही है।<sup>3</sup> पर्यावरण की समस्या कोई देश विशेष की समस्या नहीं है। यह सम्पूर्ण मानव जाति की समस्या है। इसलिए इस पर वैश्विक स्तर पर सोचने की आवश्यकता है। अन्यथा प्रकृति अपने आप को संवारना जानती है। आज का साहित्य और साहित्यकार इस समस्या को निरन्तर महसूस कर रहा है। आज साहित्यकार के सामने यह बहुत बड़ा दायित्व है कि वह प्रकृति और पर्यावरण प्रदूषण की समस्या के कारणों का खुलकर पर्दाफास करें तथा शासन-प्रशासन और जनता में जाग्रति फैलाएं। आज प्रकृति चित्रण के आलंबन और उद्दीपन रूप तक सीमित रहने से काम नहीं चल सकता। प्रकृति के प्रति गंभीर चिन्तन की आवश्यकता है। हिन्दी में पर्यावरण चिन्तन को लेकर वर्तमान में लिखा जा रहा है। लेकिन दलित विमर्श, आदिवासी विमर्श या स्त्री विमर्श जैसी स्थिति (प्रकृति या पर्यावरण विमर्श) अभी नहीं है। साहित्यकारों को इस दिशा में कदम बढ़ाने होंगे।

**विकास बनाम पर्यावरण प्रदूषण**

प्रकृति का विनाश करके हम विकास की कल्पना नहीं कर सकते जबकि आज एक भ्रामक धारणा प्रचारित की जाती रही है कि विकास के लिए कुछ तो/किसी को तो बलिदान देना ही होगा। परंतु सत्य यह है कि विकास के ऐसे फ्राड मॉडल प्रस्तुत किये जा रहे हैं जो स्वयं भी प्रकृति विरोधी होते हैं तथा उसको अंजाम देने वाली व्यवस्था भी लूट की भावना से ग्रस्त रहती है। यह किसी से छुपा हुआ नहीं है कि विकास के नाम पर प्राकृतिक संसाधनों का नीति और नियमों का उलंघन कर दोहन किया जा रहा है। सरकार इस दृश्य को खुली आंखों से देख रही है। लेकिन पूंजीवादी गठजोड़ के कारण औद्योगिकीकरण, कॉरपोरेटपरस्ती, बड़ी-बड़ी परियोजनाओं, शहरीकरण, विकास के विविध कार्यों के बहाने ने केवल अनियंत्रित रूप से जल, जंगल, जमीन को हड़पा जा रहा है बल्कि प्राकृति की संरचना के साथ भी छेड़छाड़ की जा रही है। विकास के इस आधुनिक मॉडल में आदिवासियों की बरबादी सबसे ज्यादा हुई है। जहां प्रकृति व पर्यावरण विनष्ट हुआ है वहां आदिवासी विस्थापित दर विस्थापित होता हुआ अपने अस्तित्व को खो रहा है। 'वस्तुतः पर्यावरण एवं विकास की समस्याओं को अलग करके नहीं देखा जा सकता। इसके लिए एक नवीन दृष्टिकोण, ठोस नीति तथा नियंत्रण की आवश्यकता है...यह आवश्यकता है कि हमारी विकास परियोजनाओं से पर्यावरण संतुलन को क्षति नहीं पहुंचे क्योंकि इस प्रकार की क्षति से न केवल विकास की गति अवरुद्ध होगी अपितु स्वयं मानव का भविष्य अंधकारमय हो जायेगा।<sup>4</sup> आदिवासी कविता इन खतरों की ओर न केवल संकेत करती है अपितु पर्यावरण के शत्रुओं को ललकारती भी है और लोहा भी लेती जैसे आदिवासी क्षेत्रों में आदिवासी जल, जंगल, जमीन को बचाने के लिए संघर्षरत है।

**आदिवासी, प्रकृति व पर्यावरण**

आदिवासी संस्कृति पर्यावरणीय संस्कृति है। आदिवासी हमेशा से ही प्रकृति की गोद में रहे हैं। आदिवासी संस्कृति सहअस्तित्व की संस्कृति है। प्रकृति के बिना आदिवासी अपने अस्तित्व की कल्पना नहीं कर सकता। आदिवासियों ने प्रकृति को न तो छोड़ा है और न ही उसका दोहन किया। उसके हर व्यवहार व संस्कार में प्रकृति का संरक्षण व पोषण की भावना निहित है। "आदिवासी समुदाय अपने स्थानीय पर्यावरण के साथ सामंजस्य स्थापित करके उसी के अनुकूलित जीवनयापन करते हैं, ये पर्यावरण जैसे घटकों व प्राकृतिक संसाधनों के साथ छेड़छाड़ नहीं करते हैं। इसके विस्थापन से पर्यावरण के हित में सोचना असंगत है।<sup>5</sup> आदिवासी आदिम काल से जंगलों और बिहड़ों में रहते आये हैं। इन्होंने प्रकृति के अनुकूल अपना जीवन यापन करना सीखा है। प्रकृति को छेड़कर प्रकृति के प्रतिकूल जीवन शैली इनके लिए संभव नहीं है। लेकिन आज यही आदिवासी क्षेत्र और उसकी प्रकृतिक सम्पदा सरकार, औद्योगिक घरानों, दलालों, भूमाफियाओं, कारपोरेट सेक्टर आदि के लिए लूट की चीज बनकर रह गई है। यही कारण है कि आज आदिवासी व आदिवासी कविता प्रकृति, प्राकृतिक संसाधनों की रक्षा के लिए प्रहरी की भांति लड़ रहा है।

**उद्देश्य एवं साहित्य समीक्षा**

आदिवासी जीवन व संस्कृति संगीत प्रेमी भी है और प्रकृति प्रेमी भी। अतः आदिम काल से चली आ रही उनकी गीत संगीत तथा सांस्कृतिक परंपरा में प्रकृति व पर्यावरण का अहम स्थान है। प्रसिद्ध आदिवासी कवियित्री निर्मला पुतुल कहती है कि "प्रकृति के साथ मनुष्य का रिश्ता आदिम है। इस रिश्ते की सघनता आदिवासी समाज की जीवन शैली और उसकी लोक परंपराओं में आज भी देखा जा सकता है। यदि आधुनिक विकास का तात्पर्य प्रकृति के साथ निरंतर युद्ध है तो परस्पर विरोधी प्रकृति के बावजूद साहचर्य की लोकतंत्रीय पद्धति क्या हो सकती है, आदिवासी लोक जीवन इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है<sup>6</sup> आदिवासियों की जीवन शैली प्रकृति से संचालित है। आधुनिक कविता में आदिवासी विमर्श की अलख से हिन्दी में आदिवासी कविता ने अपने विषयों व सवालों के साथ प्रभावी उपस्थिति दर्ज कराई है। आदिवासी कविताओं में साहित्यकार हरिराम मीणा, निर्मला पुतुल, ग्रेस कुजुर, भुजंग मेश्राम, महादेव टोपा, वाहरु सोनवणे, अनुज लुगुन, रोज केरकट्टा, तेजराम शर्मा, सुरेन्द्र कुमार नायक, मंजु ज्योत्सना, चन्द्रकांत देवताले, ओम नागर, भारत दोसी, प्रभात, अशोक सिंह, भुवन लाल सोरी, सरिता सिंह बड़ाईक, रामनारायण मीणा, सुशील कुमार, अशोक सिंह, हरिचरण अहरवाल, भीम सिंह पँवार, हरिशंकर अग्रवाल, वीर सिंह पाडवी, रमाशंकर चंचल, सुदीप बनर्जी आदि की कविताएं हमारे सामने नया क्षितिज प्रकट कर रही है। इन कविताओं में आदिवासी विषयों के साथ प्रकृति व पर्यावरण के विनाश के कारनामों का भण्डाफोड़ कर मानव समाज को आगाह किया गया है कि प्रकृति नहीं बचेगी तो हम भी नहीं बचेंगे। इस शोध के माध्यम से हम आदिवासी कविता का अध्ययन कर उसकी महत्वपूर्ण प्रवृत्ति

—पर्यावरण चिन्तन तथा उसके विविध पक्षों को सामने ला सकते हैं तथा इस विषय में शोध की नयी संभावनाओं की भी तलाशा जा सकता है क्योंकि अभी इस दिशा अपेक्षित कार्य नहीं हुआ है।

**आदिवासी, कविता और पर्यावरण**

हिन्दी में इस दृष्टि से यदि उपलब्ध साहित्य की समीक्षा की जाय तो आदिवासी साहित्य में यह चिन्तन प्रखर है। आदिवासी साहित्यकारों ने इस दिशा में पर्याप्त मात्रा में लिखा है। आदिवासी जीवन वन सम्पदा का पूजक और हितैषी रहा है। 'अपनी परम्परा से भावात्मक जुड़ाव के कारण आज भी देश की ये विविध जनजातियां जंगलों, पहाड़ों के बीच रहकर 'वनदेवता' (सिंगबोंगा) की पूजा करते हैं। जंगल और जंगल के सम्पूर्ण परिवेश के साथ उनका नाभिनाल संबंध है। वेशभूषा, खान-पान, पर्व-त्योहार, नृत्य, गीत, पूजा, पाठ अर्थात् इनके जीवन का कोई भी पक्ष हो, प्रकृति वहाँ साकार रूप में विद्यमान रहती है।<sup>7</sup> लेकिन विकास और औद्योगिकीकरण, जंगल व जमीन के सौदागरों के कारण आदिवासी आज पर्यावरण शरणार्थी बन कर गया है। उसके टोर-ठिकाने को वनों की अंधाधुंध कटाई व बढ़ते औद्योगिकीकरण ने उजाड़कर रख दिया है। आदिवासी साहित्यकारों ने प्रकृति संरक्षण और पर्यावरण चेतना की अलख जगाई है। इस दृष्टि से यदि आदिवासी कविता पर विचार किया जाये तो आदिवासी कवियों ने प्रकृति चिन्तन पर मार्मिक कविताओं की रचना की है। प्रसिद्ध आदिवासी साहित्यकार चिन्तक हरिराम मीणा ने लिखा है कि प्रकृति के साथ बेरहम छेड़खानी केवल आदिवासी के अस्तित्व का संकट नहीं है बल्कि सम्पूर्ण मानवता व मानवत्तर प्राणी जगत के लिए खतरा है। पर्यावरण प्रेमियों के साथ आदिवासी कविता भी सुर मिलती है।<sup>8</sup>

नदियां सूखती जा रही है, तो पर्वत टूट कर समतल होते जा रहे हैं। प्रकृति के मनोरम दृश्य लुप्त होते जा रहे हैं। आदिवासी कवियित्री ग्रेस कुजुर ने 'हे समय के पहरेदारों!' कविता में प्रकृति के बढ़ते दोहन पर चिन्ता भी व्यक्त की है तथा सचेत भी किया है। यथा— 'आज तुम/ अपने स्वार्थ के लिए/पर्वतों के पत्थर/तोड़ रहे हो/बारूदी गंध से/जीवन को मरोड़ रहे हो/क्या कभी नदिया/लौटकर पूछेगी/अपने खण्डहर होते/पर्वतों से/कि कहां गया/उनका उदगम?/कहां गया उनका वैभव?/तब पर्वत रोएगा/सूख जाएंगी उसकी धाराएं।<sup>9</sup> कवियित्री की यह चेतावनी समय की मांग है; जिस पर समय रहते विचार किया जाना आवश्यक है। निरंतर उपभोक्तावादी बनकर प्रकृति का दोहन करना मानव हित में नहीं है। यही नहीं जो संकट भविष्य के विकराल संकटों के संकेत दे रहे हैं; कवियित्री उनकी ओर भी इंगित कर रही है। आज पानी का संकट गहराता जा रहा है, कहीं पानी अतिवृष्टि के रूप में तबाही मचा रहा है तो कहीं सूखे के कारण अकाल बनकर बर्बादी का मंजर खड़ा कर रहा है। कवियित्री लिखती है कि एक बूंद पानी के लिए/तड़प-तड़प जाएंगी/हमारी पीढ़ियां/इसलिए सच कहती हूँ/...एक वृक्ष की जगह/लगाओ दूसरा वृक्ष/क्या कभी सुना है/एक पर्वत के बदले/उगाओ दूसरा पर्वत/करोड़ों साल में बने/इन पर्वतों को/तुम्हारे बारूदी

मन ने/फिर-फिर तोड़ा है/और कुंवारी हवाओं को/हर बार छेड़ा है।<sup>10</sup> प्रकृति से छेड़छाड़ सही नहीं है। प्रकृति जब विकराल रूप धारण करती है तो किसी से भी वह नियंत्रित नहीं होती है। मनुष्य ने विज्ञान की बदौलत खूब तरक्की की है, पर प्रकृति पर जीत हासिल करने का सपना शायद वह पूरा नहीं कर सकता है, करने की कौशिश भी नहीं करना चाहिए। अन्यथा जब प्रकृति बगावत करेगी तो मनुष्य अपने अस्तित्व के लिए पनाह मांगेगा। उत्तराखण्ड की त्रासदी हमारे सामने एक छोटा-सा संकेत भर है। यथा- न छेड़ो प्रकृति को/ अन्यथा यही प्रकृति/एक दिन/मांगेगी/ हमसे/ तुमसे/अपनी तरुणाई का/एक-एक क्षण/और करेगी/ भयंकर...बगावत/और तब/न तुम होंगे/न हम होंगे।<sup>11</sup>

वस्तुतः आज विकास और औद्योगिकीकरण के बहाने चन्द लोगों की स्वार्थ लिप्सा व पूंजीवदी सोच के कारण प्राकृतिक संसाधनों का अंधाधुंध दोहन किया जा रहा है। विकास और औद्योगिकीकरण के नाम पर आवश्यकता से अधिक जमीन का अधिग्रहण किया जा रहा है। बड़े-बड़े पूंजीपति, दलालवर्ग ठेकेदार फलफूल रहे हैं। इसमें जंगल व कृषि योग्य भूमि शामिल है। वर्तमान विकास का मॉडल पूंजीवदी हितों को साधने वाला तथा पर्यावरण विरोधी है। आज जो जमीन किसानों से ओनेपौने दामों में ली जाती है वही जमीन बिल्डरों द्वारा हजारों रुपये प्रति वर्गफुट की रेट से बेच दी जाती है कीमत के इस अंतर के बीच विकास की कथित अवधारणा और अनुयाइयों का तंत्र छिपा है। भारत में जमीन की लूट मौजूदा विकास मॉडल की शर्त है।<sup>12</sup> आदिवासी कविता में प्रकृति के प्रति अगाध श्रद्धा का भाव है। हमारी संस्कृति अरण्य संस्कृति के रूप में जानी जाती है। हमारी संस्कृति प्रकृति के हर उपदान और शक्ति के प्रति देवत्व का भाव रखती है। आदिवासी संस्कृति में भी प्रकृति के प्रति यही पूजनीय भाव है। आदिवासी कविता भी उसी चिन्तन परंपरा की अनुयायी है। वह प्रकृति के प्रति छेड़छाड़ करने में विश्वास नहीं करती। मंजु ज्योत्सना ने अपनी कविता 'विस्थापित का दर्द' में घटते जंगल के दर्द को पलाश के माध्यम से व्यक्त किया है। यथा- शिकायत है उसे/अब अपने गांव में/पलाश के फूल नहीं रहे/कुछ वर्षों पहले/आंगन के कोने में/मैंने लगाये थे पौधे/वे अब वृक्ष बन गये हैं/मेरा बेटा अवश्य आयेगा/क्योंकि अगले वर्ष/पलाश खिलेंगे/मेरे आंगन में।<sup>13</sup> 'वन श्री' कविता में वन की हरियली के बीच पलाश के पुष्पित होने का वर्णन किया है यथा- हरियाली को मुंह चिड़ाता/पुष्पित हुआ पलाश/रूखा तन है/सूखा वन है/ गिने चुने वे हरे पात भी/सहमे, सकुचे, झुके झुके हैं/इन सब के ऊपर मदमाता/पुष्पित हुआ पलाश।<sup>14</sup> आदिवासी कविता ने प्रकृति और मनुष्य के रिस्ते को बखूबी पहचाना है। वह जल, जंगल और जमीन के संरक्षण और संवर्धन के लिए संघर्ष की बात करती है। जल, जंगल और जमीन को बचाने के लिए लड़ाई का रास्ता तलाशती है। कवि प्रभात की यह कविता प्रकृति की गंध का अहसास तो कराती है पर इस गंध के मिटने का डर भी इसमें दिखाई देता है। यथा- पेड़ों की गंध लौट गई पेड़ों के पास/घासों की गंध घासों में/मूंगफली और अरहर की /मूंगफली और

अरहर में/मगर अब ये खुद ही बहुत कम बचे हैं/पेड़, घास, मूंगफली, अरहर/और जो बचे हैं उनसे भी/उनकी गंध छीनी जा रही है/तब कहां बचेगी प्रकृति की गंध/क्या वह मिट जाएगी/शहरों से मिट गई साफ हवा की तरह/क्या प्रकृति की गंध जैसी चीज भी/उड़ जायेगी हमारी धरती से/चील की तरह।<sup>15</sup> आज जंगलों को काटकर कल कारखाने, बड़े बड़े शापिंग मॉल व कंकरीट की कॉलोनियां खड़ी की जा रही हैं। धीरे-धीरे वन प्रदेशों का प्रतिशत घटता जा रहा है। पर्यावरण संरक्षण की अनदेखी की जा रही है। कवि अशोक सिंह ने 'संताल परगना का दुःख' कविता में संताल परगना के माध्यम से उजड़ते जंगलों की दुर्दशा का चित्रण किया है। "संताल परगना दुखी है/कि यहां के जंगल उजड़ते जा रहे हैं/गायब होते जा रहे हैं यहां के पहाड़/...निरंतर कम पड़ते जा रहे हैं उसके खेत/बिलाते जा रहे हैं नदि, तालाब, जारिया धीरे-धीरे न जाने कहां?/यहां तक कि जंगल तो जंगल/गाय, बैल, बकरी, सुअर जैसे पालतू जानवर भी/घटते जा रहे हैं लगातार....।<sup>16</sup> पर्यावरण प्रदूषण के कारण जलवायु निरंतर बदलती जा रही है, पारिस्थितिकी तंत्र गड़बड़ा गया है। जीव-जंतु व वनस्पतियां नष्ट होती जा रही हैं। डॉ.भीम सिंह की 'बबूल' कविता बबूल के माध्यम से इस पीड़ा को व्यक्त करती है- 'मेरे पूर्वजों व मेरी स्मृतियों का अभिन्न हिस्सा है-बबूल/प्रकृति की गोद में मानव का/पोषक रहा है-बबूल/देता है-छाँह, लकड़ी, पातड़े व गोद/...पर अब गाँव नंगा, बेढंगा, उमंगहीन/रूपहीन लगता है/बबूल के समूल खात्मे के बाद।<sup>17</sup> अब जंगल, जंगल नहीं, वीराने में बदल गये हैं। सरिता सिंह बड़ाईक ने 'आज का जंगल' में फैलते प्रदूषण के जाल, मिटते जंगल, जंगल के जानवरों के खत्म होने, खत्म होती वनौषधियों, पर्यावरण प्रदूषण के कारण बारिश के न होने की कथा को निरूपित किया है- नहीं है अब वैसा जंगल/खड़कती है जूतों की आवाज सूखी पत्तियों पर/छाया है आतंक का साम्राज्य चहुँ ओर/बताया था जिसे धन्वंतरी और चरक ने/आंवाला, बहेड़ा, हरड़ के पेड़ पौधे/देते थे जीवन मानव को/नहीं है अब वैसा जंगल/वीरान होते, उजड़ते जंगल, कटते पेड़/प्रदूषण का जाल फैला/बादल उड़ा, उड़ गई बारिश भी/भाग गये हैं जानवर, एक जंगल से दूसरे जंगल/पनाह मिलेगी अंत में उन्हें चिड़ियाघरों में/देखकर सोचती, उदास होता मेरा मन।<sup>18</sup>

"कलम को तीर होने दो" कविता में ग्रेस कुजूर ने कलम के माध्यम से अपनी समाज में चेतना लाने की बात कही है। वे लिखते हैं कि "वे लुटने लुटाने आए/हम गये परदेश/धरती उजड़ी, जंगल उजड़े/रह गया क्या शेष?/झाड़ियां हो गई कमान सब बिरवे वीर/देखना बाकी है कलम को तीर होने दो/कोयले की धूप में सोये है पांव/कांधो पे अपने ही?/ढोए है गांव/देह हो गई कमान सब आहै तीर/देखना बाकि है कलम को तीर होने दो।<sup>19</sup> आदिवासी लेखक कलम के माध्यम से अपने समाज में चेतना लाने के लिए दृढ़ प्रतिबद्ध है। आदिवासी कविता में आदिवासी संस्कृति, जीवन, जिजीविषा, समस्या, शोषण और व्यवहार की सटीक अव्यक्ति हुई है। आदिवासियों ने अपने मन के

दुख-दर्द को कविता और गीतों में अभिव्यक्ति किया है। एक आदिवासी गीत जिसमें पर्यावरणीय समस्याओं का बखूबी जिक्र किया है। यथा :- गाँव छोड़ब नहीं, जंगल छोड़ब नहीं/माय माटी छोड़ब नहीं, लड़ाई छोड़ब नहीं/बांध बनाय, गाँव डुबोय, कारखाना बनाये/जंगल काटे, खादान कोडे, सेंचुरी बनाये/जल जंगल जमीन छोड़ी हमिन कहाँ-कहाँ जाये/विकास के भगवान बता हम कैसे जान बचाये?/...यमुना सूखी, नर्मदा सूखी, सूखी सूवर्णरेखा/गंगा बहे गंदी नाली, कृष्णा काली रेखा/तुम पिओगे पेप्सी कोला बिसलरी का पानी/हम कैसे अपनी प्यास बुझायें पीकर कचरा-पानी/...पूरखे का मोर संजोये जंगल को बचाय/धरती रखी हरी-भरी नदी में दूध बहाय/तेरी हवस में जल गई धरती, लूट गई हरियाली/मछली मर गई, पंछी उड़ गई जाने किस दिशाएँ/मंत्री बने कम्पनी के दलाल हमसे जमीन छिनी/उनको बचाने लेकर आए साथ में पलटनी/अफसर बने हैं राजा, ठेकेदार बने हैं धनी/गाँव हमारे बन गये हैं उनकी कॉलोनी। गाँव छोड़ब नहीं, जंगल छोड़ब नहीं/माय माटी छोड़ब नहीं, लड़ाई छोड़ब नहीं।<sup>20</sup> यह संकल्प प्रकृति के लिए लड़ने का संकल्प है, अंतिम सांस तक लड़ने का। इस गीत में प्राकृतिक संसाधनों के अत्यधिक दोहन से पैदा हुई समस्याओं, जल, जंगल, जमीन की बरबादी, नदियों का सूखना, मिट्टी हरियाली, जलती हुई धरती और विकास के ठेकेदारों की बढ़ती हुई भूख, जलचर और नभचर सभी जीव जंतु व वनस्पतियों की विनाश लीला के मार्मिक दृश्य अंकित किये हैं। पर्यावरण प्रदूषण के परिणाम स्वरूप पारिस्थितिकी तंत्र भी गड़बड़ा गया है जिसके चलते हजारों-हजारों वर्षों से बहती नदियां सूख चली हैं तथा पीने को पानी तक नहीं बचा है। नेता, मंत्री, ठेकेदार, अफसर सभी ने मिलकर प्राकृतिक संसाधनों की लूटमार की है। धरती की हरियाली को छीना जा रहा है। गीत में जल, जंगल, जमीन के प्रति प्रतिबद्धता और शोषकों के प्रति आक्रोश पूर्ण अभिव्यक्ति में हुई है। गाँव, जल, जंगल, जमीन छोड़गे नहीं भले ही उन्हें इसके लिए आर-पार की लड़ाई लड़ना पड़े। आदिवासी कविता प्रश्न करती है, उन प्रश्नों का जवाब किसी के पास नहीं है।

प्राकृतिक संसाधनों का दोहन और उससे उत्पन्न पर्यावरण असंतुलन की समस्या आज के समय की सबसे बड़ी वैश्विक दुर्घटना है। प्रकृति के सबसे बड़े उपादान पहाड़ और नदियां भी अब बच नहीं पा रहे हैं। पहाड़ खोखले करके डहा दिये जा रहे हैं, तो नदियां सूखकर समतल हो गयी है। 'बांसलोक से बहत्तर' कविता में कवि सुशील कुमार ने संताल परगना की एक पहाड़ी नदी की व्यथा-कथा के माध्यम से जंगल के सौदागरों को कोसते हुए दम तोड़ते जंगलों, सूखकर समतल होती नदियों, जंगली जीव-जंतुओं के नष्ट होने के दर्द की मार्मिक व्यथा की अभिव्यक्ति की है। यथा- 'नदी माँ, तुम्हारी ममता में/बहत्तर ऋतुओं को जिया है मैंने/देखता हूँ, तिल-तिल जलती हो दिक्कुओं के पाप से तुम/दिन-दिन सूखती हो/क्षण-क्षण कुढ़ती हो निर्मोही महाजनों से/मन ही मन कोसती हो जंगल के सौदागरों को/ रेत के घुंघट में मुंह ढाँप रात-रात भर रोती

हो/तुम्हारी जिन्दगी दुःख का पहाड़ है/....पर पचा नहीं पा रही अपनी अस्मिता तुम अब/सारे पत्ते गिराकर जंगल नंगे हो रहे हैं, दम तोड़ रहे हैं/पंछी अपने नीड़ छोड़ रहे हैं ...तुम स्वयं एक दिन किवदन्ती बनकर दर्ज हो जाओगी।'<sup>21</sup> आदिवासी कविता इस बात को पूरजोर ढंग से उठाती है कि विकृत विकास की भूख ने जंगल के भूगोल को नेस्तनाबूद किया है। तरुण कुमार लाहा ने अपनी कविता 'आदिवासी कविता: इतिहास के अंदर' में लिखा है कि 'इतिहास से बाहर आकर/जब भटकते हैं हम जंगलों में/पहाड़ी झरनों से/बुझाते हैं अपनी प्यास/जंगल के वृक्षों से/बोलते-बतियाते/तभी आ धमकते हैं बाहरी लोग/कहना चाहते हमें/विकास की बात/...फिर पहाड़ों को छिलकर/किया जाता है समतल/जिनके झरने बुझाना चाहते हैं हमारी प्यास।'<sup>22</sup> जंगल उजड़ने से जंगल के जावनर भी खत्म होते जा रहे हैं। जंगल का राजा कहलाने वाले बाघ का अस्तित्व ही खतरे में है। आदिवासी कवियित्री निर्मला पुतुल ने बाघ कविता में इस सच की अभिव्यक्ति की है। यथा- 'बाघ इन दिनों खबरों की सुर्खियों में हैं/चर्चा है कि उनकी संख्या कम होती जा रही है/अब जंगल के कटने से/बाघ कम होते जा रहे हैं... बाघ थे तो जंगल सुरक्षित था/अब बाघ नहीं है तो जंगल असुरक्षित हो गया है।'<sup>23</sup> निश्चय ही जल, जंगल, जमीन जिसे आदिवासी कविता ने एक महत्वपूर्ण मुद्दे के रूप उठाया है, उस पर सभी को सोचने की आवश्यकता है।

#### निष्कर्ष

समग्रतः कहा जा सकता है कि आज की उपभोक्तावादी संस्कृति, विकास के पर्यावरण विरोधी मॉडल, औद्योगिकीकरण, प्राकृतिक संसाधनों का असंयमित दोहन, वैज्ञानिक संसाधनों का दुरुपयोग, आधुनिक जीवन शैली आदि कई कारणों ने आज हमें प्रकृति पूजक से प्रकृति विरोधी बना दिया है तथा जल, जंगल, जमीन की अनियंत्रित लूट का खेल चल रहा है। लेकिन आदिवासी समाज आज भी जंगल और बिहड़ों में रह कर प्रकृति को बचाने में लगा है। इसके लिए उसे हर कदम संघर्ष करना पड़ रहा है। विकास का मॉडल पर्यावरण और प्रकृति के अनुकूल न होने तथा उसकी क्रियाविधि में नीति और नियमों की पलना न होने के कारण प्रकृति निरंतर नष्ट होती जा रही है। आदिवासी कविता ने अपनी सम्पूर्ण अभिव्यक्ति में पर्यावरण और प्रकृति के वर्तमान परिदृश्य और बरबादी, उसके कारणों तथा परिणामों की प्रभावी व बेबाक अभिव्यक्ति दी है। निश्चय ही आदिवासी कविता ने इस वैश्विक समस्या को रेखांकित कर जाग्रति का संदेश दिया है।

#### संदर्भ ग्रंथ सूची

1. पर्यावरण एवं प्रदूषण, डॉ.एच.एम.सक्सेना, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, तृतीय सं. 1995 पृ.सं. 1
2. समकालीन जनमत, मई 2010, लेख 'कैसे रूकेगी पर्यावरण शरणार्थी की बाढ़?' पृ.सं. 23
3. समकालीन जनमत, जुलाई 2013, डॉ.विमल सिंह का लेख 'विकास के नाम पर पर्यावरण की अनदेखी' पृ.सं.13

4. पर्यावरण एवं प्रदूषण, डॉ.एच.एम.सक्सेना राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर तृतीय संस्करण 1995 पृ.सं.2
5. स्मारिका,सम्पादक डॉ.रमेशचन्द्र मीणा, डॉ.ओ.पी.शर्मा का लेख-‘पर्यावरण को बचाने के लिए संघर्षरत आदिवासी’ 7-8 दिसंबर 2011 को राजकीय महाविद्यालय, बूंदी में आयोजित राष्ट्रीय संगोष्ठी पृ. सं. 119
6. युद्धरत आम आदमी, सं.रमणिका गुप्ता अंक अप्रैल -जून 2010, लेख ‘जहां जीवन ही लोक परंपरा है’ पृ.सं 61
7. अरावली उद्घोष, जुलाई 2015 पृ.सं. 50
8. समकालीन आदिवासी कविता, सम्पादक हरिराम मीणा, अलख प्रकाशन जयपुर प्र.संस्करण 2013 पृ. सं. 10
9. वही पृ.सं.24
10. वही पृ.सं. 25
11. वही पृ.सं.25-26
12. समकालीन जनमत जून 2011 पृ.सं. 4
13. समकालीन आदिवासी कविता, सं. हरिराम मीणा, अलख प्रकाशन जयपुर, प्र.सं. 2013 पृ.सं.46
14. वही पृ.सं.47
15. वही पृ.सं. 64
16. वही पृ.सं.67
17. वही पृ.सं.74
18. वही पृ.सं.82
19. आदिवासी स्वर और नयी शताब्दी,सं. रमणिका गुप्ता,डॉ. रामदयाल मुण्डा-कथन शालवन के अंतिम शाल का, पृष्ठ 26
20. आदिवासी विमर्श : जनतांत्रिक मूल्यों की तलाश, सम्पादक डॉ.विरेंद्र सिंह यादव डॉ.रावेन्द्र कुमार साहू पैसिफिक पब्लिकेशन, शिवाजी चौक, सादतपुर एक्सटेंशन दिल्ली-110094 प्रथम संस्करण 2012 पृ. सं.36
21. समकालीन आदिवासी कविता, सं. हरिराम मीणा, अलख प्रकाशन जयपुर प्र.संस्करण 2013 पृ.सं.85
22. अरावली उद्घोष, जुलाई 2014 पृ.सं. 54
23. अरावली उद्घोष, सितंगबर 2008 पृ0 सं.42